AIDWA

जनवरी 2022 न्यूज लेटर
अनुक्रमणिका

1. संपादकीय
2. समान अधिकार, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की रक्षा में चल रहे संघर्ष को नए साल में महिलायें मजबूती देंगी – .मरियम धवले
3. शाहीन बाग का संघर्ष जारी है – मैमूना मुल्ला
4. उत्तर प्रदेश में बनते ई श्रम कार्ड और जमस की भूमिका – दीप्ति मिश्रा
5. कोरोना को हराया क्यूबा ने – डब्ल्यू एच व्हीटनी
6. दलित महिलाओं का सम्मेलन – फालमा चौहान और मंजीत राठी
7. कार्यकर्ताओं की डायरी – उत्तर प्रदेश से नीलम तिवारी और मध्य प्रदेश से रीना शाक्य
8. फिल्म समीक्षा – ''जय भीम''– मधु गर्ग

संपादकीय

2021 का यह हमारा आखिरी न्यूजलेटर है. जब तक इसे आप देखेंगे, 2022 शुरू हो गया होगा। यह नया साल कैसा होगा ? कितनी यातनाओं और हमलों का साल होगा ? कहा नहीं जा सकता, लेकिन एक बात तय है, यह संघषों का साल होगा !
तीखे संघर्षों का साल.!!

2021 भी यातनाओं और हमलों का साल था। एक राज्य के बेरहमी से दो टुकड़े करने के बाद, दोनों टुकड़ों को अपमानजनक तरीके से 'केंद्र शासित इलाके' नामकरण करने के बाद, धारा 370 समाप्त किये जाने के बाद और पुरे इलाके को सैन्य बलों के हवाले करने के बाद, कश्मीर की जनता और कश्मीर की महिलाओं को जिल्लत, भय और हिंसा के घेरे में जीना पड़ रहा है।

2021 के बड़े हिस्से के दौरान, किसान आन्दोलन को कई तरह के हमले बर्दाश्त करने पड़े।
2021 में मुस्लिम और ईसाई अल्पसंख्यकों के लिए एक ऐसा दौर शुरू हुआ जिसमे उनके बुनियादी नागरिक अधिकारों पर ही न रुकने वाले प्रहार हो रहे हैं।

2021 में दलितों पर और खास तौर से दलित महिलाओं पर होने वाले अत्याचार में इजाफा हुआ है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान में रोज 15–16 दलित महिलाओं और बच्चियों के साथ बलात्कार होता है, अक्सर उनकी हत्या भी कर दी जाती है।

2021 में मजदूरों के अधिकारों और नौकरियों, दोनों का हनन हुआ है। अब तो यह हाल है कि अगर सरकार द्वारा किये जा रहे निजीकरण के खिलाफ मजदूर लड़ने की सोचते हैं, तो उन्हें केवल नौकरी से अलग करने की ही नहीं बल्कि जेल भेजे जाने की धमकियाँ मिल रही है।

2021 में हिंसा का नया रूप हमें देखने को मिला जब उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी में, केन्द्रीय राज्य गृह मंत्री के बेटे ने अपनी जीप को ही एक हथियार बनाकर, 4 किसानों और एक पत्रकार को जान से मार डाला और कईयों को घायल किया।

लेकिन 2021 में हमने न झुकने वाले किसानों, जिनमे लाखों की संख्या में हमारी बहादुर किसान बहने भी थी, को अहंकार में चूर सरकार चलाने वालों को धूल चटाते भी देखा है।
2021 में हमने मजदूरों को अपने अधिकारों के लिए जबरदस्त लड़ाई लड़ते हुए भी देखा है और उनकी अगली कतारों में हमने आशा, आंगनवाडी और रसोइया बहनों को मुठ्ठी बांधे, लाठियों का सामना करते हुए भी देखा है।

अल्पसंख्यकों और दलितों के अधिकारों के लिए हमने लाखों आवाजों को उठते सुना है और उनके साथ एक–एक करके लोगों को खड़े होते भी देखा है।

केरल, तामिलनाडु और बंगाल में साम्प्रदायिक तानाशाहों की करारी हार की खुशी मनाते करोड़ों महिलाओं और पुरुषों को भी हमने देखा है।

सैन्य बर्बरता के खिलाफ हमने नागालैंड की जनता का उभार भी देखा है। नागा महिलाओं ने अपनी पीड़ा और आक्रोश को कविता में गुंथा है। उनके बोल केवल उनके ही नहीं, हम सबके हैं।

एमिस्न्ला जामीर कोहिमा में साहित्य पढ़ाती हैं। उनकी कविता, 'कभी कभी', हम सबके जज्बात को कहती है। ''कभी कभी जब मैं उन फीकी पड़ी खाकियों के सामने से गुजरती हूं, जिनके हाथ में बंदूके हैं, तो मैं भूल जाती हूँ कि यह देश जिसे त्योहारों और गीतों ने लपेट रखा है, अभी भी कांटेदार तार के फीतों से बंधा है... ।''

आप सबको नया साल, नए संघर्षो का साल, निर्णायक संघर्षों का साल मुबारक हो!

सुभाषिनी अली

समान अधिकार, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की रक्षा में चल रहे संघर्ष को नए साल में महिलायें मजबूती देंगी

– मरियम धवले

हम समान अधिकारों, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के लिए संघर्षों को मजबूत करने के अपने दृढ़ संकल्प के साथ 2022 में प्रवेश कर रहे हैं ।

2021 में हमने अपने देश में किसानों का अभूतपूर्व बहादुराना और जीत हासिल करता हुआ संघर्ष देखा। उन्होंने आरएसएस–भाजपा शासन द्वारा की गई हर क्रूरता का सामना किया । इस फासीवादी सरकार ने उनकी जीजीविषा और संघर्ष की भावना को तोड़ने की कोशिश करने के लिए हर संभव कुटिल तरीकों का सहारा लिया लेकिन सफल नहीं हुए । आखिरकार पीएम मोदी को तीनों किसान विरोधी कृषि कानूनों को निरस्त करने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह हमारी कृषि को बेचने के खिलाफ सभी भारतीयों की जीत थी । यह लुटेरों के मोदी–शाह–अंबानी–अडानी गठजोड़ के खिलाफ संघर्ष की जीत है।

हम इस साल अपनी आजादी के 75 साल पूरे कर रहे हैं। लेकिन हाशिए पर पड़े तबके और महिलाओं की स्थिति ने न केवल केंद्र सरकार के घोर दिवालियापन को उजागर किया है बल्कि गरीब विरोधी, क्रूर, शोषक पूंजीवादी व्यवस्था को भी उजागर किया है ।

विश्व आर्थिक मंच की हालिया वैश्विक जेंडर गैप रिपोर्ट में कहा गया है कि महिलाओं की श्रम में भागीदारी की दर में कमी, खराब स्वास्थ्य देखभाल, साक्षरता का न होना, आय में असमानता और राजनीति में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के कारण भारत में लैंगिक अंतर बढ़कर 62.5 प्रतिशत हो गया है । भारत 156 देशों की सूचि में 140 वें स्थान पर रहा है।

भारत में बढ़ते कुपोषण और भुखमरी से होने वाली मौतें खाद्य सुरक्षा की गंभीर स्थिति का स्पष्ट परिचायक हैं। दुनिया के अविकसित बच्चों में भारत का लगभग 30.8 प्रतिशत हिस्सा है । स्वास्थ्य की हाल की आपात स्थिति ने जनता के बड़े हिस्सों को गरीबी में धकेल दिया है । और इस परिस्थिति के बावजूद भारत का स्वास्थ्य सुरक्षा पर पर होने वाला सरकारी व्यय दुनिया में सबसे कम है ।

मोदी सरकार के आगमन के बाद से महिलाओं के खिलाफ अपराध और हिंसा की घटनायें खतरनाक अनुपात से बढ़ गए हैं। हर 3 में से 1 महिला अपने जीवनकाल में किसी न किसी प्रकार की शारीरिक या यौन हिंसा का शिकार होती है। उत्तर प्रदेश में हाल ही में हुई हाथरस और बदायूं की भयावह घटनाओं ने महिलाओं की सुरक्षा में भाजपा शासन की पूर्ण विफलता को उजागर कर दिया है। वास्तविकता में भाजपा नेताओं ने खुलकर हर बार आरोपियों का समर्थन किया है। निर्भया योजना और बलात्कार पीड़ितों के लिए वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर जैसी हिंसा की शिकार महिला को सुरक्षा देने वाली योजनाओं के क्रियान्वयन में कोई सुधार नहीं हुआ है। बेटी बचाओ ,बेटी पढ़ाओ का नारा सिर्फ जुमला बनकर रह गया है।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक देश में हर तीन मिनट में महिलाओं के खिलाफ कोई न कोई अपराध होता है। हर 29 मिनट में महिला के साथ बलात्कार होता है और दहेज हत्याएं हर 77 मिनट में होती हैं। बलात्कार के हर 10 मामलों में से 6 पीड़ित 18 से कम उम्र की लड़कियां होती हैं। घरेलू हिंसा और यौन शोषण, नैतिक पुलिसिंग और इज्जत के नाम पर हत्याओं में वृद्धि हुई है ।

पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में सांप्रदायिक और जातिवादी ताकतों के मजबूत होने से महिला मुक्ति के संघर्ष को गंभीर झटका लगा है। हरिद्वार के भयानक सम्मेलन ने भारत और दुनिया के सभी लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और देशभक्त तबके को चौंका दिया है।

ऐसी गंभीर पृष्ठभूमि के साथ हम नए साल 2022 में प्रवेश कर रहे हैं। हमें मनुवादी ताकतों द्वारा शुरू किए जा रहे हमलों को पीछे हटाने के लिए एक शक्तिशाली महिला आंदोलन खडा करना होगा जिसके लिये हमें सभी प्रयास करने होंगे । हमें भूख, बेरोजगारी, भय और हिंसा से मुक्त होकर सम्मान के साथ जीवन जीने के अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करना होगा । 2022 में हम सभी को समान अधिकारों, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की रक्षा में एक साथ आगे बढना होगा।

शाहीन बाग : प्रतिरोध का प्रतीक

– मैमूना मुल्ला

दो साल पहले जब हिंदुस्तान की नफरतजीवी सरकार ने नागरिकता कानून में संशोधन किया तब ये कहते हुए कि ये देश के धर्मनिरपेक्ष संविधान के खिलाफ है, भारी आक्रोश शुरू हुआ। जनता इसके खिलाफ सड़कों पर आने के लिए मजबूर हो गई। इस जिद्द–ओ–जहद में सब से सबसे आगे आयीं शाहीन बाग की महिलायें !! इस मजाहिरे ने सबको चकित कर दिया और यह प्रतिरोध एक ऐतिहासिक आंदोलन बन गया ।

क्या खास बात थी इसमे ?

एक तो ये कि वो मुस्लिम औरतें थीं। अब तक जिन्हें पिछड़ा हुआ माना जाता रहा था कि वो घर की चहार दीवारी से बाहर नहीं आतीं वो सड़कों पर उतर आई थीं । और इन महिलाओं का नेतृत्व कर रहीं थीं दादियां और नानिया !! ठाकुर अजय बिष्ट ने तो उनके मर्दों तक को उलाहना दे डाली कि वो "अपने" विरोध के लिए औरतों को ढाल बना रहे हैं।

शाहीन बाग में अपनी कविता का पाठ करती हुयी रौनक परवीन।

दूसरी बहुत बड़ी बात ये कि मुसलमानों को हमेशा आतंकवादी, पाकिस्तान समर्थक वगैरा कह कर ही बदनाम किया जाता रहा है। पर ये कोई इस्लाम–खतरे–में–है का नारा बलन्द करने नहीं आई थीं बल्कि हिंदुस्तान को हिंदुस्तान बनाने के लिए आई थीं। संविधान को बहाल करवाने आई थीं। देश के संविधान को उलट देने के लिए जो कानून इस आरएसएस–बीजेपी की सरकार

ने थोपा था उसके खिलाफ सिर्फ अपनी आवाज ही नहीं बलन्द की बल्कि तमाम देशवासियों का आह्वान किया कि वो इस आंदोलन में शरीक हो जाएँ।

शाहीनबाग इसलिये भी हर देशवासी का आंदोलन था कि सीएए के तहत जो कागज़ सरकार द्वारा मांगे जाने वाले थे वे तो इस देश के गरीब,आदिवासी,महिलायें, प्रवासी मजदूर, खेत मजदूरों के पास भी नहीं रहने वाले थे।

तीसरा ये कि हर तरह के दमन करने की साजिश हुई, भड़काऊ भाषण दिए संघी नेताओं ने, दिल्ली में कत्ल–ए–आम हुआ (संज्ञा तो वैसे दंगे ही की दी गई) फिर भी ये आंदोलन पुर अमन रहा ।

चौथा ये कि इतनी बड़ी तादाद में मुसलमान औरतों का दिन–रात यूँ अपने हक के लिए आवाज उठाना इतना प्रेरणादायक था कि दिल्ली के दर्जनों इलाकों में और देखते ही देखते देश भर में अनगिनत जगहों पर ऐसे शाहीन बाग बनने लगे !! लखनऊ, भोपाल, मुंबई, कोलकाता, बेंगलुरू, चेन्नई, अलीगढ़, वगैरा । पाँचवाँ ये कि महामारी की वजह से जब सरकार को इसे खत्म करने की "वाजिब" वजह मिल गई और उन्हें शाहीन बाग के मैदान से घर जाना पड़ा तब भी तख्त पर अपनी चप्पलें रख गयीं । ये ऐलान था कि हमारी जिद्द–ओ–जहद जारी रहेगी जब तक आईन–विरोधी, जनवाद–विरोधी कानून को वापस ना लिया जाए।

11 साल के मोहम्मद ज़ैद शाहीन बाग के बाल वालंटियर थे जो रोज शाम को टेंट में आते थे। उनका काम वहां की सफाई करना था जिसे वे पूरी मुस्तैदी के साथ करते रहे।

वादा तो उन्होंने पूरा किया। महामारी ने उन्हें मजबूर किया था लेकिन उनकी मजबूती छीन नहीं पायी । इसी दौरान एक और जबरदस्त आंदोलन हुआ ! खेती–विरोधी, जन–विरोधी कानून जो इस सरकार ने तानाशाही ढंग से पार्लियामेंट में पास करके बनाए थे उसके खिलाफ किसान आंदोलन – जिसने इस सरकार को घुटनों पर ला खड़ा कर किया। इससे ये यकीन पुख्ता हो गया कि आंदोलन की ताकत ही हमारा जाइज हक हमें दिलवा सकती है। दरअसल आज़ादी के बाद पहली बार चला इतना जबरदस्त शांतिपूर्ण आंदोलन जो किसानों ने किया उसका आधार यह शाहीनबाग का देश की महिलाओं ने देश भर में चलाया आंदोलन ही था जिसने किसान आंदोलन को ताकत दी थी। इस दौरान संघी अजेंडा जारी रहा । नफरत की राजनीति और बढ़ी ।

मुसलमानों को बदनाम करने में आरएसएस बीजेपी और उनके कारकुन ग्रुपों में होड़ लगी रही । दिल्ली में हिंसा हुई तो भड़काऊ भाषण देने वालों को इज्ज़त बख्शी गई लेकिन सी ए ए के खिलाफ आये कई एक आंदोलनकर्ताओं को यू ए पी ए जैसे जालिमाना कानून के तहत जेलों में ठूंस दिया गया।

इससे बे–परवाह तो नहीं लेकिन बेखौफ होकर इस साल 16 दिसंबर को वो जो अब जिद्द–ओ–जहद की आग में तप कर आंदोलनकारी बन चुकी थीं फिर हाजिर हुईं और डंके की चोट पर ऐलान करके गईं कि
संघर्ष जारी है.!!..

श्रम कार्ड बनाने के लिए आयोजित कैंप के अनुभव

उत्तर प्रदेश में घरेलू कामगार महिला संगठन के बैनर पर श्रम मंत्रालय द्वारा बनाए जा रहे असंगठित मजदूरो के श्रम कार्ड में कामगार महिलाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सेदारी की। एडवा और घरेलू कामगार महिला संगठन के संयुक्त प्रयास से यह कैंप लखनऊ और कानपुर में लगाए गए। घरेलू कामगार महिला संगठन अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति का ही हिस्सा है और ट्रेड यूनियन सीआईटीयू से संबद्ध है । बेरोजगारी और कृषि संकट ने ग्रामीण परिवारों को बडे शहरों में काम की तलाश में पलायन के लिए मजबूर किया है। पुरुष दिहाड़ी मजदूर, रिक्शा चालक या अन्य कोई काम ढूंढते है वही महिलाएं इस महंगाई में परिवार का खर्च चलाने के लिए दूसरों के घरों में झाड़ू पोंछा , खाना बनाने या कपडे धोने का काम पकड़ लेती है।

कोविड महामारी और पिछले सालो में लगे लॉक डाउन के कारण बहुत सी घरेलू कामगार महिलाओं को काम से हाथ धोना पड़ा।

इन कामगार महिलाओं की उपस्थिति कही दर्ज नहीं होती । ये किसी भी शहर के अदृश्य मजदूर है जिनकी मजदूरी या वेतन का कोई कानूनी ढांचा नहीं है। घरेलू कामगार महिला संगठन पिछले 10 वर्षों से इन कामगारों की ''श्रमिक'' के रूप में पहचान दिलाने की लड़ाई लड़ रहा है ।

इन्ही संघर्षो का ही परिणाम है की सरकार द्वारा असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की सूची में घरेलू कामगार महिलाओं को भी शामिल किया गया।

लखनऊ और कानपुर में ऐडवा और घरेलू कामगार यूनियन के तत्वावधान में गरीब बस्तियों में कैंप लगाए गये तब हमें समझ में आया कि महानगरों में इनकी संख्या हजारों में है। ये इतने अभाव में जीवन बसर कर रहे है कि सरकार की कोई भी योजना आने पर उन्हें लगता है कि शायद उनके जीवन में

कुछ बदलाव आएगा। श्रम कार्ड कैंप में उमड़ने वाली भीड़ ऐसा ही कुछ बता रही थी।

इन कैंपों में हमारे संगठन द्वारा महिलाओं से बातचीत कर उनकी समस्याओं को जानने का मौका मिला।

इस प्रयास से ऐडवा व घरेलू कामगार महिला संगठन की सदस्यता में भी वृद्धि हुई। लखनऊ में करीब 20 कैंप लग चकु है और लगभग 1000 महिलाएं घरेलू कामगार यूनियन की सदस्य बन गई तथा कानपुर में 9 कैंप लग चुके है तथा लगभग 300 महिलाएं यूनियन की सदस्य बन गई है।

इस प्रयास से ऐडवा को सदस्यता बढ़ाने का एवं इन महिला श्रमिकों में जागरूकता और उनके अधिकारों की समझ को बतलाने का अवसर मिला।

अगले कुछ समय में इन नए सदस्यों के लिए हमें कमेटी का गठन करना है।

शिक्षा, विज्ञान और सामाजिक एकजुटता के साथ कोविड–19 को हराया क्यूबा ने

– डब्ल्यू टी व्हिटनी

(काउंटर पंच वेब साइट पर मूल इंग्लिश लेख का हिंदी न्यूज लेटर के लिये न्यूज लेटर की टीम द्वारा हिंदी में अनुवाद व संक्षेपीकरण)

शिक्षा क्यूबा के समाजवाद के लिए केंद्रीय नारा है । सभी के लिए वैज्ञानिक ज्ञान और स्वास्थ्य देखभाल के लिए क्रांतिकारी सरकार का समर्पण क्यबूा के नागरिकों के द्वारा कोविड–19 महामारी को काबू में करने के लिये किये गये काम से सिद्ध हुआ है। उसके पड़ोसी संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक इतने भाग्यशाली नहीं हैं ।

क्यूबा वासियों ने तहेदिल से मास्क लगाने, सामाजिक–दूरी बनाये रखने, जांच में सहयोग देने और आवश्यकता होने पर क्वारंटाइन में जाने का न केवल समर्थन किया बल्कि उसका पालन भी किया। क्यूबा के जैव चिकित्सा अनुसंधान और उससे जुड़ी उत्पादन सुविधाओं ने पांच एंटी–कोविड टीके बनाए। 3 दिसंबर तक क्यूबा वासियों के 90.1 प्रतिशत को अपनी पहली खुराक मिल चुकी थी और उनमें से 82.3 प्रतिशत दोनों टीके लगवा चुके थे। केवल सात अन्य देशों में टीकाकरण की दरें क्यूबा से अधिक थीं।

क्यूबा अब अपने टीकों को वियतनाम, वेनेजुएला, ईरान, और निकारागुआ के लिए भेजने की तैयारी कर रहा है या भेज चुका है। क्यूबा के वैज्ञानिक अपने सोबराना प्लस वैक्सीन को विकसित कर रहे हैं जो औमिक्रॉन वायरस के खिलाफ रक्षा करने में समर्थ होगा।

क्यूबा की ये सफलतायें इसलिये महत्वपूर्ण और पशंसनीय हैं क्योंकि ये सब कुछ उसने अमरीका की जबरदस्त आर्थिक नाकाबंदी के बावजूद हासिल किया है जिस नाकाबंदी के फलस्वरूप शोध के लिये आवश्यक उपकरण और अन्य साधन मिलने में दिक्कतें होती हैं।

टीकाकरण कार्यक्रमों और अन्य सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायों के बारे में अमेरिका और क्यूबा की मान्यताएं अलग हैं । क्यूबा में वैक्सीन उत्पादन आम लोगों के लिये होने वाला अच्छा, शुद्ध और सरल है । जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में, सरकार द्वारा मॉडर्ना वैक्सीन के लिये सब्सिडी पाने वाले निर्माता 2021 में 1353 अरब रूपयों का भारी मुनाफा कमाएंगे। अमेरिका की सरकारी क्षेत्र की प्रयोगशालाओं के वैज्ञानिकों और उनके समकक्ष निजी दवा कंपनियों में काम कर रहे वैज्ञानिकों ने टीके का विकास आपसीं सहयोग के साथ किया, लेकिन अब कंपनियां बौद्धिक संपदा और पेटेंट के अधिकार का दावा खुद के लिए कर रही हैं।

वैज्ञानिक तथ्यों और विशेषज्ञ राय के प्रति अस्वीकृति संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापक है । राजनीतिक और सांस्कृतिक विभेद मास्क लगाने और सामाजिक दूरी बनाये रखने के प्रति आम जनता को उदासीन बना देते हैं। नतीजा यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में कोविड–19 के संक्रमण की व्यापकता प्रति एक लाख व्यक्तियों में 14.9 है जबकि यही क्यूबा में 8.5 है । दोनों देशों में प्रति एक लाख जनसंख्या पर कोविड – 19 से मृत्यु दर क्रमशः 240.18 और 73.31 है।

क्यूबा के राष्ट्रीय नायक और स्वाधीनता आंदोलन के नेता जोस मार्ती 1878 में ग्वाटेमाला में पढ़ाते थे । वहां उन्होंने लिखा कि पढना आना दरअसल कुछ काम करना सिखाता है और लिखना सीखने से हम आगे बढना सिखते है। उन्होंने सुझाव दिया था कि, प्रकृति की ताकतों का अध्ययन करना और उन्हें नियंत्रित करना सीखना सामाजिक समस्याओं को हल करने का सबसे सीधा तरीका है। फिदेल कास्त्रो के नेतृत्व में क्यूबा के क्रांतिकारियों ने 1953 में सैंटियागो के मोकाडा बैरक पर हमला किया और क्यूबा को तानाशाही से निजात दिलाई । 1853 में जन्मे जोस मार्ती के सम्मान में उन्होंने खुद को सौ साल की पीढ़ी कहा। मार्ती का शैक्षिक मिशन अब अच्छे हाथों में था।

फिदेल कास्त्रो ने 16 दिसंबर, 1960 को गुफाओं के खोजकर्ताओं की एक बैठक में कहा कि, हम प्रकृति की दुर्घटनाओं के बारे में सिखाते हैं लेकिन हम मानवता की जबरदस्त दुर्घटनाओं के बारे में नहीं सिखाते हैं । प्रकृति के अध्ययन का आह्वान करते हुए उन्होंने घोषणा की कि, हमारे देश का भविष्य आवश्यक रूप से विज्ञान को समझने वालों और विचार करने वालों का भविष्य होना चाहिए। गौरतलब है कि जब फिदेल और उनकी पार्टी ने सत्ता संभाली तब क्यूबा के केवल 5 प्रतिशत बच्चे ही पांचवी कक्षा तक पहुंच पाते थे।

क्रांति के बाद 1961 में क्यूबा में एक विशाल साक्षरता अभियान शुरू हुआ। करीब 1 लाख किशोर और युवा वालंटियर गांवों,खेतों में जा जाकर गरीब,अशिक्षित मजदूरों, महिलाओं और खेत मजदूरों को लिखना और पढना सिखाने लगे। जल्द ही क्यूबा दुनियां में सबसे अधिक शिक्षितों का देश बन गया था। सरकार ने शिक्षक बनने के लिये इच्छुक विद्यार्थियों के लिये विशेष छात्रवृत्तियों की घोषणा की। प्राथमिक स्कूलों, पूर्व सेकेंडरी स्कूलों, घरेलू कामगार महिलाओं के लिये स्कूलों, कला और संगीत के स्कूलों के लिये अलग अलग छात्रवृत्तियां दी गयीं। इसके अलावा तकनीकीशियन,भाषाविदों, इंजिनियरों, डॉक्टरों, अर्थशास्त्रियों, वास्तुविदों, शिक्षाशास्त्रियों के रूप में भी शिक्षा के क्षेत्र में लगे वालंटियरों को काम करने के लिये न केवल प्रेरित किया गया बल्कि उनकी इच्छा के अनुसार उन्हे उस क्षेत्र में प्रशिक्षित भी किया गया।

फिदेल के नेतृत्व में क्यूबा की सरकार का लक्ष्य था कि इस छोटे से द्वीप को शिक्षकों से भर दिया जाये ताकि भविष्य में हमारा देश बुद्धिमान विचारकों, शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों से भरा पूरा हो।

क्रांति के 60 साल बाद डॉ ऑगस्टिन ने क्यूबा में एक और साक्षरता अभियान की जरूरत को निरूपित करते हुये कहा कि अब विज्ञान को क्यूबा के निवासियों की राष्टीय संस्कृति बनाना होगा।

क्यूबा के सेटर ऑफ मॉलिक्यूलर इम्युनॉलॉजी 1994 में उसकी स्थापना के समय से ही उस संस्था के प्रमुख डॉ ऑगस्टिन क्यूबा के बायो मेडिकल संस्थानों में काम कर रहे युवा वैज्ञानिकों की इस बात के लिये तारीफ करते थे कि वे सामाजिक प्रतिबद्धता, भविष्य की बेहतर दुनियां की कल्पना और नैतिक मूल्यों के साथ काम कर रहे हैं। ये ही वे गुण थे जिनकी वजह से क्यूबा कोविड की चुनौतियों से निपट पाया और उसके बाद टीके का निर्माण भी सफलता पूर्वक किया गया।

डॉ ऑगस्टिन के अनुसार विज्ञान एक सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि विज्ञान का जनक मानवीय समाज होता है कोई व्यक्ति नहीं। मुफ्त, सार्वभौमिक और सबके लिये सहज रूप से उपलब्ध स्वास्थ्य सेवायें, वैज्ञानिक और बायोतकनीकी विकास और दवा उद्योग सामाजिक एकजुटता का आधार हैं।

डॉ ऑगस्टिन के लिए, सामाजिक संदर्भ मायने रखता है । उदाहरण के लिए, जब एक बहुराष्ट्रीय निगम की एक अभिनव प्रयोगशाला विदेशों में अपना टीका बेचती है, तो उस देश में कीमतें और स्वास्थ्य देखभाल की लागत बढ़ जाती है जिससे असमानताएं भी बढ़ जाती हैं। अंत में ये प्रक्रिया उन निजी कंपनियों के मुनाफे बढाने में मददगार साबित होती है।. इसलिये अब दुनिया में असमानताएं बढ़ रही हैं तो हमें अपनी उपलब्धियों का बचाव करना होगा । हम संस्कृति, वैज्ञानिक विचार और विज्ञान को अर्थव्यवस्था से जोड़कर ऐसा करते हैं ताकि सामाजिक असमानताओं पर विजय हमारे आर्थिक विकास में सहायक हो सके। अमरीका और यूरोप में वैक्सीन के प्रति अरूचि और विरोध के बारे में चिंतित एक चिकित्सक और समाजशास्त्री ने न्यूयॉर्क टाइम्स में अपने लेख में लिखा कि ''जब सरकारें जनता के हित में आवश्यक खर्चों के अपने बजट में कटौती करके मूलभूत सेवाओं का निजीकरण कर देती है तो जनता का उन संस्थाओं पर से विश्वास उठ जाता है जो उनके लिये कुछ नहीं करती हैं और जनता के स्वास्थ्य को एक सामूहिक जिम्मेदारी के तौर पर नहीं देखा जाता है। लोग ऐसी नीतियां चाहते हैं जो उस मूलभूत सि़द्धांत पर आधारित हो जिसके अनुसार व्यक्ति का विकास सामूहिक भलाई पर ही निर्भर होता है।''

पड़ोसी क्यूबा ने इस सिद्धांत को न केवल याद रखा है वरन् इसे पूरी शिद्दत के साथ अपने देश में लागू भी किया है।

महिला एवम दलित मुद्दों पर जनवादी महिला समिति, हिमाचल प्रदेश का अधिवेशन

– फालमा चौहान और मनजीत राठी

श्रेणियों और जाति आधारित हमारे देश में दलित महिलाओं की स्थिति और समस्याएँ निरंतर चिंता का विषय रही हैं। इन्हीं चिंताओं को सांझा करने और हस्तक्षेप की रणनीति तैयार करने के लिए, अ.भा..ज.म.स हिमाचल राज्य कमेटी ने 13 दिसंबर, 2021 को महिला एवम दलित मुद्दों पर शिमला के वाइ डब्ल्यू सी ए हॉल मे राज्य स्तरीय अधिवेशन का आयोजन किया जिसमे 6 जिलों से 120 महिलाओं ने भाग लिया। सम्मेलन की मुख्य वक्ता एडवा की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष सुभाषिणी अली सहगल थीं। हिमाचल की कड़कती ठंड के बावजूद विभिन्न जिलों से ये महिलायें रात को ही अपने घरों से शिमला की ओर निकल पड़ी थी।

अधिवेशन को संबोधित करते हुए सुभाषिणी अली ने स्पष्ट किया कि कैसे जातिवादी मानसिकता हमारे देश मे ऊपर से नीचे तक कूट कूट के भरी है, रूढ़िवादी परंपरायें और संस्कार इसे निरंतर खाद पानी देते हैं और महिलाओं को अधिकारों से वंचित रखने का ही काम करते हैं। उन्होंने जोर दिया कि कैसे आज सत्तारूढ़ सरकार संविधान को हटा कर मनुस्मृति को लागू करना चाहती है क्योंकि उनके लिए मनुस्मृति ही न्याय शास्त्र है। आज दलित बच्चों के अधिकारों को भी समाप्त किया जा रहा है। 10 वीं के बाद इन बच्चों को जो छात्र–वृति

मिलती थी, उसे भी बंद कर दिया गया है । उन्होंने सावित्री बाई फुले और अन्य समाज सुधारकों के उदाहरण से समझाया कि कैसे उन्होंने दलितों की शिक्षा के लिए जबरदस्त संघर्ष किए हैं । हमे इन संघर्षों से हासिल अधिकारों और अवसरों को और आगे बढ़ाना होगा क्योंकि जब तक समाज के किसी भी हिस्से मे भेदभाव और शोषण जारी है, महिलाओं की समानता और मुक्ति का सपना पूरा नही हो सकता। उन्होंने महिलाओं के तीन स्तर पर– एक महिला के रूप मे, मजदूर के रूप मे और नागरिक के रूप मे– शोषण के खिलाफ लड़ाई जारी रखने की जरूरत पर जोर दिया।

अधिवेशन मे शामिल महिलाओं और युवा लड़कियों ने जातिय उत्पीड़न और छुआछूत के दिल दहलाने वाले जो अनुभव रखे, वे किसी भी सभ्य या आधुनिक कहे जाने वाले समाज की शर्मनाक वास्तविकता उजागर करने के लिए काफी है। चम्बा से आई आशा ने बताया कि दलित औरतो को मंदिर मे प्रवेश नही करने दिया जाता है हमे यह कहा जाता है कि आप केवल दूर से ही देवता को प्रणाम कर सकते हैं। मंदिरों व अन्य पूजा–स्थलों पे दलितों की परछाई तक को अपवित्र मानते है। सिरमौर से आई अमिता, जो जनवादी महिला समिति की जिला अध्यक्ष भी है, ने अपने अनुभव साँझा करते हुए कहा कि जातिय भेदभाव कम होने की बजाय बहुत ज्यादा बढ़ गए है। हमारे लिए थाली गिलास भी अलग से रखे जाते है और नीचे जमीन पर बैठ कर ही खाने पीने की इजाजत है। अमिता के ही शब्दों में – "मैं 19 साल के बाद जब अपने गांव गई तो मैने वहाँ महिलाओँ का एक समूह बनाया। मेंने सोचा कि महिलाओं को इस भेदभाव के खिलाफ जागरूक करने की जरूरत है। लेकिन पंचायत के लोगो ने महिलाओ को भड़का दिया और कहा कि इसके साथ जुड़ेंगे तो तुम्हे इसका गिलास और अन्य बर्तन धोने पड़ेगें। उसके बाद महिलाओं का मीटिंग मैं आना ही कम हो गया"।

बलदेया से आई चंद्रकांता ने बताया कि मैं जब स्कूल मे पढ़ती थी तो मेरी एक दोस्त उच्चजाति से संबंध रखती थी। हम स्कूल में अपना खाना इकट्ठा खाते थे। एक दिन उसके माता पिता ने उसे मेरे साथ खाना खाते देख लिया तो उसे वहाँ से उठा कर दूर ले गए, और उसको खूब गालियां पड़ी। उन्होंने उजागर किया कि मासिक धर्म के दौरान जब औरत को आराम करने की जरूरत पड़ती है तो उसे ओबरे में (जहाँ गाय को बांधा जाता हैं) रखा जाता है, 6 दिन तक ना वह रसोईघर मे जा सकती है और ना ही खाना बना सकती है। दलित बच्चो के साथ अध्यापक भी स्कूलों में की तरह से भेदभाव करते है। सिरमौर से आई मीनू, जो महिला समिति की जिला सचिव है, उसने दलित महिलाओं के साथ हिंसा और शारीरिक शोषण के बारे मे बताते हुए कहा, कि कुछ समय पहले 5 लड़को ने दलित लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार किया और उसकी जाति वाले लोग उलटे ठाकुर के पास माफी मांगने गए कि लड़की से गलती हो गई है, हमे माफ कर देना। मीनू ने आगे कहा दलित समुदाय की एक औरत का जमीन के ऊपर झगड़ा हो गया, तो राजपुत परिवार ने कहा कि "तुम नीची जात से हो, तुम क्या कर लोगे, हमारा राज है हम यह जमीन नही छोड़ेंगे। जो करना है कर लो, तुम्हारी कोई नही सुनेगा।"

एस एफ आई से जुड़ी छात्रा, निमृता ने कहा कि "जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ती थी तो मेरी छाती बहुत बढ़ रही थी। मुझे यह बात पता नही थी कि सभी लोगो ने मुझे अजीब नजर से देखना शुरू कर दिया था। मैंने परवाह नही की, मैने सोचा कि मैं सब लड़कियों के जैसी ही हूँ । मैं जब दसवीं मैं पंहुची तो मेरे एक अध्यापक ने कहा– तूने कुछ डाला है अंदर से ? मैं रोने के लिये मजबूर हो गई क्योकि मुझे अपनी ब्रेस्ट का नंबर ही पता नही था मुझे अपनी ब्रेस्ट का नंबर 12 वीं में पता चला, फिर मैने यह सारी चीजें करनी शुरू की। तो मुझे इस तरीके का अपमान सहन करना पड़ा था"। सोलन से आई गरिमा ने कहा कि हमे बचपन से ही यह सिखाया जाता है कि इनके साथ खाना नही खाना है इनके साथ बैठना भी नही है। एक बार मैं अपने साथ एक दलित की बच्ची लाई और उसे अपने रसोईघर तक ले गई उसे खाना भी खिलाया। इस पर मेरे पापा ने मुझे खूब डाँट लगाई और कहा तू तो इनके साथ शादी भी कर लेगी, मैने कहा वह मेरा अपना निर्णय होगा। मण्डी से जयवंती, जो अभी महिला समिति की राज्य उपाध्यक्ष भी है, ने बताया कि कैसे उसकी बहन की लड़की द्वारा अंतरजातीय विवाह करने पर परिवार ने उसके साथ संबंध तोड़ लिया और जब मैंने उसका साथ दिया, तो परिवार वालों ने मुझ से भी किनारा कर लिया!

अधिवेशन मे प्रतिभागियों का जवाब देते हुए मुख्य वक्ता ने उदाहरण देकर समझाया, कि कैसे सामाजिक बनावट एक सीढी की तरह है, जिसमे दलित महिलायें सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर हैं। इसीलिए उनके साथ सबसे ज्यादा भेदभाव और अत्याचार होता है। इस सबसे निचले पायदान के स्तर पर बदलाव करने से ही समाज बराबरी और सामाजिक न्याय की ओर आगे बढ़ सकता है। अधिवेशन मे राज्य सचिव, फालमा चौहान, ने नए वर्ष के जनवरी महीने के अंत तक सभी जिलों मे दलित मुद्दों पर अधिवेशन आयोजित करने का प्रस्ताव रखा। अंत मे राज्य अध्यक्ष, रीना सिंह, ने सभी प्रतिभागियों और मुख्य वक्ता का धन्यवाद करते हुए एडवा हिमाचल का इस दिशा मे निरंतर कार्यरत रहने का आश्वासन दिया।

सेनेटरी नैपकिन्स वितरण मलिन बस्तियों की युवतियों के बीच एक अनुभव

कानपुर नगर में कोरोना महामारी के बीच जब हमारा संगठन मलिन बस्तियों मे आवश्यक खाद्य सामग्री के वितरण के लिए गया वहां पर हमने महसूस किया कि वहां रहने वाली लड़कियों की एक अत्यन्त आवश्यक आवश्यकता थी सेनेटरी नैपकिन्स। जब हमने उन लड़कियों से इस विषय मे बात की तब उन्होने हमसे बताया कि आन्टी सेनेटरी नैपकिन्स तो हम सभी चाहते हैं कपड़ा लेने मे बहुत परेशानी होती है लेकिन सेनेटरी नैपकिन्स पैड इतने महंगे मिलते हैं कि हम लोग खरीद नही पाते हैं।यह सब उन लड़कियों ने हमे बहुत ही संकोच के साथ बताया यह सुनकर मै भावुक हो गयी। मैने उनसे कहा कि हम आपके लिए सेनेटरी नैपकिन्स पैड का इन्तजाम करेंगे आप लोग इस्तेमाल करेंगी तो सुविधा भी होगी और इन्फेक्शन भी नहीं होगा साथ ही तमाम तरह की बीमारियों से भी बचाव होगा।यह सुनकर वह सभी बहुत खुश हुईं और कहने लगीं आन्टी प्लीज आप हमारे लिए यह काम जरूर कीजिएगा हम सभी इस्तेमाल करेंगे।

इसके बाद विवरण सामग्री के साथ बस्तियों मे हमने सभी युवतियों को सेनेटरी नैपकिन्स पैड वितरण भी शुरू कर दिया।शुरुआत मे हमे बहुत कम पैड के पैकेट्स मिल पाये 200पैकेट से हमने शुरूआत की नतीजा आश्चर्यजनक था। दोबारा जब हम उन इकाइयों मे गये तब सभी लड़कियों की जुबान पर यही सवाल था आंटी अब और पैड कब लायेंगी क्या हर महीने पैड देंगी?लेकिन फिर भी हमने कोशिश की। सिर्फ कानपुर शहर की बस्तियों मे लगभग कुल मिलाकर 3000 सेनेटरी नैपकिन्स के पैकेट्स मई से लेकर दिसम्बर तक वितरित किये जा चुके है।हमारे इस काम से काफी लोग प्रभावित हुए और भविष्य मे उन्होने हमे

सहयोग करने के लिए कहा है।सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार की गतिविधियों से आम जनता के एक विशेष वर्ग में हमारे संगठन के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है उम्मीदें भी पैदा हो रही हैं।लड़कियां हमारा इन्तजार करती हैं कि आन्टी कब पैड देने आयेंगी।इस तरह के काम हमारे संगठन के लिए बहुत जरूरी हैं तभी नवयुवतियों मे संगठन के प्रति रुचि पैदा कर पायेंगे और यही हमारे संगठन को आगे ले जाने का काम करेंगी। हमारे संगठन को शिक्षित और जागरूक कार्यकर्ता मिलेंगे। भविष्य मे हम ऐसे कार्यों को निरन्तर करते रहेंगे अपने संगठन को आगे बढ़ाने के लिये।

अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति ग्वालियर चंबल संभाग में दलित व स्लम बस्तियों की महिलाओं के बीच उनके स्वास्थ्य व शिक्षा को लेकर लगातार काम कर रही है। महावारी व स्वच्छता विषय पर कोरोनावायरस की दूसरी लहर में हमारे संगठन द्वारा लगभग 500 युवतियों के बीच एक सर्वे किया गया । जिसमें लड़कियों ने माहवारी के दौरान अलग–अलग तरह से उनके साथ होने वाले छुआछूत के बारे में अपने अनुभवों को साझा किया।

सर्वे में अधिकतर लड़कियों को पहली बार महावारी 12–14 वर्ष की उम्र में हुई थी । अधिकांश को महावारी के बारे में पहले से जानकारी नहीं थी । उन्होंने बताया कि महावारी के दौरान रसोई, मंदिर से दूर कर दिया जाता है, यहां तक कि अचार, पापड़ तक को छूने नहीं दिया जाता है। सर्वे में एक बड़ी बात सामने आई, कि स्कूलो मे अच्छे साधन – संसाधन न होने के कारण लगभग 230 लड़कियों ने महावारी के दौरान अपने स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी ।

उन्हें घर में किसी गंदे कपड़े के इस्तेमाल करने को कहा जाता था जिससे उन्हें यूरिन इन्फेक्शन जैसी गंभीर समस्या से अनेक बार गुजरना पड़ा । हमने महिला डॉक्टर कि मदद लेकर अलग–अलग बस्तियों में लड़कियों और महिलाओं की महावारी स्वच्छता को लेकर मीटिंग की और उचित साधनों के प्रयोग के बारे में बताया।

कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं और अन्य सामाजिक लोगों की मदद से लड़कियों को सेनेटरी पैड उपलब्ध कराने की कोशिश की, लेकिन यह मदद हमारे काम के दायरे के हिसाब से बहुत छोटी थी। 300 पैड हमने अलग अलग 6 स्थानों पर लगभग 200 लड़कियों की बैठकें करके वितरित किये। अभी और भी बैठकों और पैड वितरण का काम जारी है।

अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति की ग्वालियर जिला अध्यक्ष रीना शाक्य द्वारा बींदहमण्वतह के साथ मिलकर मध्यप्रदेश के सरकारी स्कूलों में निशुल्क सेनेटरी पैड वितरण को लेकर एक ऑनलाइन पेटिशन दायर की है जिस पर अब तक लगभग 7000 साइन आ चुके हैं।

भोपाल में भी इसी तरह से बस्तियों में लड़कियो की बैठकें की गयीं और सेनिटरी पैड की आवश्यकता और सफाई के बारे में बताया गया। यहां पर हमारे पास उतने संसाधन नहीं थे फिर भी कोलार के इलाके में 60,सुदामा नगर बस्ती में 70, आचार्य नरेंद्र देव नगर में 40 पैड अर्जुन नगर में 40, सुभाष नगर मे 40 और पिपलानी के इलाके में 60 पैड का वितरण किया गया।

यह बात शहरी बस्तियों में तीव्रता के साथ महसूस हुयी कि लडकियां अपनी सफाई और उसका उनके स्वास्थ्य से संबंध समझती है लेकिन आर्थिक विषमता और सेनेटरी पैड्स का महंगा होना उन्हे मजबूरन उस गंदगी में रहने के लिये मजबूर करता है।

कानपुर से नीलम तिवारी
ग्वालियर से रीना शाक्य, प्रीति सिंह
भोपाल से खुशबू केवट

जय भीम – संवैधानिक अधिकारों पर एक उम्मीद जगाती फिल्म ...

– मधु गर्ग

प्राइम वीडियो पर रिलीज तमिल फिल्म ''जय भीम'' एक फिल्म ही नहीं जो मनोरंजन के लिए बनाई गई हो बल्कि दिमाग को झिंझोड़ कर रख देने वाली एक कलाकृति है। ये हाशिये पर धकेले गये समुदायों के साथ हर रोज हो रही नाइंसाफी पर बहस को जन्म देती है साथ ही साथ कानून और संघर्ष के रास्ते चलकर इंसाफ की लड़ाई जीतने के विश्वास को मजबूत करती है । ये फिल्म संविधान और कानून में एक भरोसा जगाती है ।तमिल डायरेक्टर जी . गैनेवेल बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने 1993 की एक सच्ची घटना को अपनी फिल्म का विषय बनाया और इरुलार आदिवासी समुदाय पर व्यवस्था के हाथों हुए दमन और अत्याचार को बखूबी दिखाकर आदिवासी समुदायों के शोषण को सामने लाने का काम किया । यह तंत्र उन्हें नागरिक तक मानने से इंकार करता है, वे आधार कार्ड, राशनकार्ड तक से मरहूम हैं वहीं उनका नाम भी वोटर लिस्ट में नहीं है।

फिल्म के एक दृश्य में आदिवासी महिला सेंगानी का केस लड़ रहे चंद्रू कोर्ट में कहते हैं कि इरुलार आदिवासी समुदाय तमिलनाडु के मूल निवासी हैं किन्तु आज वे अपने गांव में भी नहीं रह सकते।

फिल्म के पहले दृश्य में ही जातिगत भेदभाव को बखूबी दिखाया गया है जब जेल से छूटे कैदियों से उनकी जाति पूछकर एक विशेष जाति के लोगों को अलग लाइन में खड़ा किया जाता है और फिर पुलिस कुछ अनसुलझे मामलों में

उन्हें आरोपी बनाकर पुनः जेल भेज देती है । फिल्म एक आदिवासी समुदाय की गर्भवती महिला सेंगानी की इंसाफ के लिए संघर्ष की कहानी है जिसका पति राजाकुन्नू पुलिस कस्टडी से लापता हो गया है । पुलिस उसे और उसके दो परिजनों को चोरी के झूठे मामले में आरोपी बनाकर गिरफ्तार करती है और फिर थाने में क्रूर अत्याचार करती है । सेंगानी गांव में आने वाली टीचर जी की मदद से लाल झंडे की पार्टी सीपीएम की मदद से मद्रास हाईकोर्ट के मानवाधिकार वकील चंद्रू के पास पहुंचती है जो उसका केस लड़ते हैं और पूरे केस के दौरान कोर्ट में व्यवस्था के क्रूर चेहरे को बेनकाब करते हैं । वकील चंद्रू की मजबूत दलीलों और कोर्ट के आदेश पर गठित जांच टीम के मुख्य आइजी पेरुमल स्वामी आदिवासियों के बीच स्वयं जाकर आदिवासियों के ऊपर किये गये पुलिस उत्पीड़न की कहानी सुनकर विचलित हो जाते हैं। उनकी निष्पक्ष जांच व वकील चंद्रू की मजबूत दलीलों से राजाकुन्नू केस का खुलासा होता है कि पुलिस के क्रूर अत्याचार के कारण उसकी पुलिस कस्टडी में ही मौत हो गई थी जिसपर पर्दा डालने के लिए पुलिस ने झूठे गवाह बनाये थे।

फिल्म में इरुलार आदिवासी समुदाय के सवालों को और उनके प्रति तथाकथित उच्च जातियों के अमानवीय व्यवहार को बखूबी दर्शाया गया है जैसे जब वे अपने लिए जमीन के पट्टे की मांग करते हैं तो गांव के दबंग कहते हैं कि क्या हवा महल बनाना है जो जमीन का पट्टा चाहते हो , उन्हें वोट देने के अधिकार से जानबूझ कर वंचित किया जाता है क्योंकि चुनाव लड़ने पर उनकी झोपड़ियों में वोट की भीख मांगनी पड़ेगी । गांव के सरपंच को भी आदिवासियों के वोट की चिंता नहीं है क्योंकि वह आदिवासियों के वोट से सरपंच नहीं बना है । एक

मेहनत कश समुदाय जो उनके खेतों में मजदूरी करता है , उनके घर बनाने के लिए ईंटें बनाता है उस समुदाय को उसके सभी नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है ।इस समुदाय के कुछ सपने हैं जैसे पट्टे की जमीन मिल जाए और उसमें ईंटों का पक्का घर बन जाये जो पूरे नहीं होते ।पुलिस बिना किसी वारंट के इनकी झोंपड़ियों में घुसती है, मारपीट करते हुए थाने लाती है और महिलाओं को भी नहीं बख्शती।

आदिवासी महिला के कपड़े उतारने में भी पुलिस को कोई हिचक नहीं है , गर्भवती महिला सेंगानी को भी पूछताछ के नाम पर रात को गैरकानूनी तरीके से उठा लाती है । इस समुदाय को लेकर पहले से ही धारणा बना ली गई है कि ये अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं और चोरी इनका पेशा है जिस पर वकील चंद्रू का जवाब कि किस जाति में श्चोरश नहीं होते हैं , हमारे तुम्हारे यहां तो इससे बड़े चोर बैठे हैं, समाज के मठाधीशों के मुंह पर करारा तमाचा है।

फिल्म में सेंगानी का चरित्र एक लड़ाकू और बहादुर महिला का है जिसके साथ अभिनेत्री लिजो मोल जोस ने पूरा न्याय किया है। फिल्म में सेंगानी पुलिस के उच्च अधिकारी द्वारा दिये जा रहे लालच को ठुकराकर उसे दो टूक जवाब देकर सर ऊंचा कर अपनी बेटी हाली का हाथ पकड़कर उस बड़े आफिस से बाहर निकलती है क्योंकि वह स्वाभिमान से जीना चाहती है तथा पति की इंसाफ की लड़ाई में कोई सौदेबाजी नहीं कर सकती है। उसे पुलिस थाने में केस वापसी का दबाव बनाया जाता है तथा झोपड़ी जलाने तक की धमकी दी जाती है किन्तु वह अपनी लड़ाई से एक कदम भी पीछे नहीं हटती । ष्इंसाफ की चाह में किया जाने वाला संघर्ष भी इंसाफ है ष जैसी कहावत को सेंगानी उस समय चरितार्थ करती है जब उसे अपने पति की मौत की जानकारी मिल जाती है फिर भी वह पुलिस द्वारा किए गये इस अन्याय के खिलाफ पर्चे बांटती है, लोगों को संगठित करती है और मोर्चों में हिस्सेदारी करती है। इसी प्रकार एक और महिला चरित्र टीचर जी की भूमिका अहम है । आदिवासी समुदाय को पढ़ाने के उद्देश्य से आने वाली टीचर मैत्रया सेंगानी और आदिवासी समुदाय के साथ होने वाली नाइंसाफी के खिलाफ संघर्ष में उन्हें रास्ता दिखाती है और लड़ाई में हमेशा साथ रहती है।

मानवाधिकार वकील के.चन्द्रू का चरित्र निभाने वाले अभिनेता सूर्या के लाजवाब अभिनय ने फिल्म को जीवंत बना दिया है ।दरअसल चंद्रू जो असल जिंदगी में भी गरीबों और वंचितों की लड़ाई लड़ते रहे हैं , यह उनकी जिंदगी का असली केस है जो उन्होंने लड़ा और आदिवासियों को इंसाफ भी दिलवाया ।वे असल जिंदगी में सीपीएम से जुड़े रहे तथा स्टुडेंट फेडेरेशन (थ्) में नेतृत्वकारी भूमिका

में रहे । फिल्म में चंद्रू का चरित्र एक ऐसे मानवाधिकार वकील का है जो हाशिए पर धकेल दिए गये समाज की लड़ाई लड़ता है । मजदूरों , वकीलों के पक्ष में लाल झंडे के नेतृत्व में मोर्चे निकालता है । वह गरीबों को इंसाफ दिलाने के रास्ते में किसी भी समझौते से इंकार करता है । उसके चौंबर में कार्ल मार्क्स , पैरियार व अंबेडकर की फोटो दर्शाती है कि वह समाज में समानता के पक्ष में तथा हर प्रकार के जातिगत भेदभाव के खिलाफ बुलंद आवाज उठाते हैं । असल जिंदगी में भी एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा कि मार्क्सवाद ने उन्हें अंबेडकर को समझने का नजरिया दिया है । फिल्म के नायक चंद्रू सेंगानी की फीस न दे पाने की असमर्थता पर कहते हैं कि हुनर की इज्जत तभी होती है जब वह किसी के काम आये। बेगुनाहों के लिए कौन लड़ेगा?? उनके ये संवाद उनके चरित्र को समझने के लिए काफी हैं।

''जय भीम'' फिल्म एक सच्ची घटना पर आधारित है और इस पूरे मामले में लाल झंडे की पार्टी सीपीएम की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण रही है । फिल्म के डायरेक्टर जी गैनवेल ने भी इसको स्वीकार करते हुए कहा है कि वंचितों की लड़ाई तो लाल झंडे की पार्टी ही लड़ती है । आदिवासी राजाकुन्नू की लड़ाई में तमिलनाडु सीपीएम हर कदम उसकी पत्नी पार्वती (असली नाम) के साथ रही । कामरेड के आर गोविंदन जो पार्वती और राजाकुन्नू की 13 साल चलने वाली लड़ाई में तमाम धमकियों और लालच को दरकिनार कर साथ खड़े रहे। इसी प्रकार कामरेड आर राजमोहन और तमिलनाडु सीपीएम राज्य कमेटी सदस्य के बालाकृष्णन जो वर्तमान में राज्य सचिव हैं , उन्होंने पार्वती को इंसाफ दिलाने के लिए आंदोलन का नेतृत्व किया ।टीचर की भूमिका में मैत्रयी लिटरेसी मूवमेंट की हिस्सा थीं जो तमिलनाडु पार्टी के सांइस फोरम द्वारा चलाया जा रहा था । कामरेड जी रामाकृष्णन इस फोरम के इंचार्ज थे और उन्होंने राजाकुन्नू के केस को गाइड करने का काम किया।

सबसे बढ़कर वकील के. चंद्रू को जब इस केस में मद्रास हाईकोर्ट से 5000 की रकम कॉस्ट के रूप में दी गई तो उन्होंने यह पैसे तमिलनाडु एडवा की हमारी प्रिय नेता मैथिली शिवरामन को दे दी कि वे गरीब महिलाओं की मदद करेंगी । इस फिल्म के माध्यम से सीपीएम की इस केस में भूमिका स्पष्ट होती है कि लालझंडे की इस पार्टी ने हाशिए पर धकेल दिए गये लोगों की आवाज को बुलंद किया है । तमिलनाडु सीपीएम तो बराबर छूआछूत और जातिगत भेदभाव के खिलाफ लड़ाई में अगुवा भूमिका में रही है।

फिल्म में पुलिस कस्टडी में बेगुनाहों पर पुलिस के क्रूर अत्याचार मन को विचलित करते हैं वहीं आज भी आये दिन पुलिस कस्टडी में हो रही मौतों पर यह फिल्म सोचने के लिए विवश करती है। उप्र के आगरा , कानपुर , कासगंज में हाल में पुलिस कस्टडी में हुई मौतें इसका ताजा उदाहरण हैं।

फिल्म का अंतिम दृश्य बेहद खूबसूरत संदेश देता है जिसमें सेंगानी की बेटी चंद्रू के साथ बैठकर अखबार पढ़ती हुई दिखती है मतलब बाबा साहब अम्बेडकर का संदेश

''पढ़ो, संगठित हो और लड़ो''